द्रव्यार्थिक नयके तीन भेद हैं-नैगमनय और व्यवहारनय। विधि अर्थात् सत्ताको छोडकर प्रतिषेध असत्ता भिन्न उपलब्ध नहीं होती है , इसलिये विधिमात्र ही तत्व है। इस प्रकारके निश्चय करनेवाले नयको समस्तका ग्रहण करनेवाले होनेसे संग्रहनय कहते हैं । अथवा, द्रव्यको छोडकर पर्यायें नही पाई जाती हैं, इसलिये द्रव्य ही तत्व हैं। इसप्रकारके निश्चय करनेवाले नयको संग्रहनय कहते हैं। संग्रहनयसे ग्रहण किये गये पदार्थोके विधिपूर्वक अवहरण करनेको अर्थात् भेद करनेको व्यवहार कहते है। उस व्यवहार आधीन चलनेवाले नयको व्यवहारनय कहते हैं। जो है वह उक्त दोनों अर्थात् अनेकको प्राप्त होता है उसे नैगमनय कहते हैं अर्थात् संग्रह और असंग्रहरुप जो द्रव्यार्थिक नय है वह ही नैगमनय है। ये तीनों ही नय नित्यवादी हैं, क्योंकि, इन तीनों नयोंका विषय पर्याय न होनेके कारण इन पर्यायार्थिका द्विविध:- अर्थवयो व्यञ्जननश्यश्चेति । द्रव्यपर्यायार्थिकनययो किकृतो भेदश्चेदुच्यते ऋजुसूत्रवचनविच्छेदो मूलाधारो येषां नयानां ते पर्यायार्थिका:। विच्छिद्यतेऽस्मिन् काल इति विच्छेद:। ऋजुसूत्रवचनविच्छेदो मुलाधारो येषां नयानां ते पर्यायार्थिका:। विच्छिद्यतेऽस्मिन् काल इति विच्छेद:। ऋजुसूत्रवचंन नाम वर्तमानवचनम्, तस्य विच्छेद : ऋजुसूत्रवचनविच्छेद :। स कालो मूल आधारो येषां नयानां ते पर्यायार्थिका :। ऋजुसूत्रवचनविच्छेदादारभ्य आ एकसमयाद्वस्तुस्थित्यध्यवसायिन: पर्यायार्थिका इति

तीनों नयके विषयमें सामान्य और विशेषकालका अभाव है ।

विशेषार्थ --- एवंभतनयसे लेकर विलोमऋमसे ऋजुसूत्र नय तक पूर्व पूर्व नय सामन्य रू पसे और उत्तरोत्तर नय विशेषरू पसे वर्तमान कालवर्ती पर्यायको विषय करते हैं।इस प्रकार सामान्य और विशेष दोनों ही काल द्रव्यार्थिक नयेक विषय नहीं होते हैं। इस विवक्षासे द्रव्यार्थिक नयके तीनों भेदोंके नित्यवादी कहा है। अथवा, द्रव्यार्थिक नयमें कालभेदकी विवक्षा ही नहीं हैं, इसलिये उसमें सामान्य और विशेषकालका अभाव कही है ।

अर्थनय और व्यंजन (शब्द) नयकेभेदसे पर्यायार्थिका नय दो प्रकारका है ।

शंका--- द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयमें भेद किस कारणसे है?

समाधन--- ऋजुसूत्र वचनोंका विच्छेद जिस कालमें होत हैं, वह (काल) जिन नयोंका मूल आधार है वे पर्यायार्थिकनय है । विच्छेद अथवा अन्त जिस कालमें होता है उस कालमें विच्छेद कहते हैं। वर्तमानवचनको ऋजुसूत्रवचन कहते हैं और उसके विच्छेदको ऋजुसूत्रवचनविच्छेद कहते हैं। वह ऋजुसूत्रके प्रतिपादक वचनोंके विच्छेदरू प कालसे लेकर एक समय पर्यन्त वस्तुकी स्थितिका निश्चय करनेवाले पर्यायार्थिकनय हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इन पर्यायार्थिक नयोंके अतिरिक्त शेष शुद्धाशुद्धरू प द्रव्याथिक नय हैं

वा अर्थबोधेषु कुशले भवो वा नैगम: । अथवा नैकेगमा: पन्थानो यस्य स नैकगम :। तत्राय सर्वत सदित्येवमनुगाकारावबोधहेतुभूतां महासत्तामिच्छति अनुवृत्तव्यावृत्तावबोधहेतुभुतं च सामान्यविशेषं द्रव्यत्वादि व्यावृत्तावबोधहेतुभूतं च नित्यद्रव्यवृत्तिमन्यं विशेषमिति। स्था. सू.पृ. ३७१. सिद्धसेनीया: पुन: षडेव नयानभ्युतपगतवन्त; नैगमस्य संग्रहव्यवहारयोरन्तर्भावविक्षणात् । तथाहि यदा, नैगम सामान्यप्रतिपत्तिपरस्तदा स संग्रहेऽन्तर्भवति सामान्याभ्युपगमपरत्वात् विशेषाभ्युपगमनिष्ठस्तु व्यवहारे। आ. सू . पृ .

मु. द्रव्यार्थिका पर्यायार्थिकयो :

द्रव्यमर्थ: प्रयोजनमस्येत द्रव्यार्थिक: तभ्दवलक्षणसामान्येनाभिन्नसादृश्यलक्षासामान्येन भिन्नमभिन्नं च वस्त्वभ्युपगच्छनू द्रव्यार्थिक इति यावत् परि भेदं ऋजुसूत्रवचविच्छेदं एति गच्छतीति पर्याय :। स पर्याय: अर्थ प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिक: सादृश्लक्षणसामान्येन भिन्नमभिन्नं च द्रव्यार्थिकाशेविषय ऋजुसूत्रवचविच्छेदेन पाठयन् पर्यायार्थिक इत्यवगन्तव्य:। जयध. अ. पृ. २७.

यावत् । अपरे शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिका: १ (तत्र शुद्धद्रव्यार्थिक: पर्यायकलक्डरहित: बहुभेद: संग्रह: (अशुद्ध) द्रव्यार्थिक: पर्यायकलक्डक्डितविद्रव्यविषय: व्यवहार: । यदस्ति न तद्द्वयमतिलंध्य वर्तत इति नैकगमो नैगम: शब्दशीलकर्मकार्यकारणाधारध्ेयसचारमानमेयोन्मेयभूतभविष्यद्वर्तमानादिकमाश्रित्य स्थितोपचारविषय:। जयध. अ. पृ. २७.

तत्राथव्यञ्जनपर्यायैविभिन्नलिडसंख्याकाल कारकपुरू षोपग्रहभेदैरभिन्नं वर्तमानमात्रं वस्त्वघ्यवस्यन्तोऽर्थनया:, २ (वस्तुन: स्वरू पं स्वधर्मभेदेन भिदानोऽर्थनय:। अभेदेको वा, अभेरू पेण सर्व वस्तु इयर्ति एति गच्छति इत्यर्थनय: जयध. अ. पृ. २७.)

न शब्दभेदेनार्थभेद इतर्थ :। व्यञ्जनभेदेन वस्तुभेदाध्यवसायिनो व्यञ्जननया: ३ (ऋजुसूत्रवचनविच्छेदोपलक्षितस्य वस्तुन: वाचकभेदेने भेदको व्यञ्जननय:। जयध. अ. पृ. २७.)

तत्रार्थनय: ऋजुसूत्र:। ४ (ऋजु प्रगंण सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्र: स.सि. १,३३. सूत्रपावद्दजुसूत्र:। यथा ऋजुसूत्रपातस्थता ऋजु प्रगणं सूत्रयति तन्त्रयत इति ऋजुसूत्र:। स.रा.वा. १,३३, ऋजुसूत्रं क्षगव्वंसि वस्तु सत्सूत्रयेदृजु। प्राधान्येन गुणीभावद् द्रव्यस्यानर्पणात्सत: ।। त.श्लो. वा. १,३३,६१, ऋजु प्राञ्जलं (व्यक्तं) वर्तमानक्षणमात्रं सूत्रयतीत्यृजुसूत्र:। प्र.क.मा.पृ. २०५. तत्रर्जुसूत्रनीति: स्याच्छुद्वपर्यायसंश्रिता । नश्वरस्यैव भावस्य भावा स्थितिवियोगत:।। अतीतानागताकारकालसंस्पर्शवर्जितम्। वर्तमानतया सर्वमजुसूत्रेण सुत्र्यते ।। स.त.टी.पृ.३११-३१२.

कुत:? ऋजु प्रगणं सूत्रयति सुत्रयति सूचयतीति तत्सिद्धे:। नैगमसंग्रहव्यवहाराश्चार्थनया इति चेत्, सन्त्वेतेऽर्थनया: अर्थव्यापृतत्वात्, किंतु न ते पर्यायार्थिक: द्रव्यार्थिकत्वात् ।

व्यञ्जननयस्त्रिविध:। शब्द समभिरू ढ एवंभूत इति। शब्दपृष्ठतोऽर्थग्रहण-

यही उनमें भेद है।

उनमेंसे अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायसे भेदरू प और लिंग, सेख्या, काल, कारक, पुरू ष और उपग्रहके भेदसे अभेदरू प केवल वर्तमान-समयवर्ती वस्तके निश्चय करनेवाले नयोंको अर्थनय कहते हैं। यंहा पर शबदोंके भेदसे अर्थमे भेदकी विवक्षा नहीं है । व्यंजन (शब्द) के भेदसे वस्तुसे भेदका निश्चय करनेवाले नय व्यंजननय कहलाते हैं। इनमें, ऋजुसूत्र नयको अर्थनय समझना चाहिये । क्योंकि, ऋजु-सरल अर्थात् वर्तमान-समयवर्ती पर्यायमात्रको जो सुत्रयति अर्थात् सूचित करे उसे ऋजुसूत्र नय कहते है। इसतरह वर्तमान पर्यायरू पसे अर्थको ग्रहणकरणेवाले होनेके कारण यह नय अर्थनय है, यह बात सिद्ध हो जाती है ।

शंका--- अर्थको विषय करनेवाले होनेके कारण वे भी अर्थनय हैं, फिर यंहा पर अर्थनयोंमें केवल ऋजुसूत्रनयका ही ग्रहण क्यों किया ?

समाधान--- अर्थको विषय करनेवाले होनेके कारण वे भी अर्थनय हैं इसमें कोई बाधा नहीं है। किंतु वे तीनों नय द्रव्यार्थिकरू प होनेके कारण पर्यायार्थिक नहीं हैं।

व्यंजननय तीन प्रकारका है-शब्द, समभिरू ढ और एवंभूतं। आधारसे

प्रवण: शब्दनय: १, (लिडसंख्यासाधानानिवृत्तिपर: शब्दनय:। स.सि.१,३३, शपत्यर्थमाहयति प्रत्यायतीति शब्द:। त.रा.वा. १,३३. कालादिभेदतोऽर्थस्य भेदं य: प्रतिपादयेत् । सोऽत्रे शब्दप्रधानत्वादुदाहत : त.श्लो.वा.१,३३,६८. कालकारकलिडसंख्यासाधनोपग्रहभेदाभ्दिद्रिन्नमर्थ शपतीति शब्दो नय:। प्र. क. मा. पृ. २०६. विरोधिलिडसंख्यादिभेदाभ्दिन्नस्वभावताम्। तस्यैव मन्यमानोऽयं शब्द:प्रत्यवतिष्ठते।। स.त.टी.पृ.३१३.)

लिडसंख्याकालकारकपुरू षोपग्रहव्यभिचारनिवृत्तिपरत्वात्। लिड-व्यभिचारस्तावदुच्यते- स्त्रीलिड्रे पुल्लिड्राभिधानं तारका स्वातिरिति पुल्लिड्रे स्त्र्यभिधानं अवगमो विद्येति। स्त्रीत्वे नपुंसकाभिधानं वीणा आतोद्यमिति। नपुंसके स्त्र्यभिधानं आयुधं शक्तिरिति । पुल्लिड्रे नपुंसकाभिधानं पटो वस्त्रमिति । नपुंसके पुल्लिड्राभिधानं आयुधं परशुरिति। संख्याव्यभिचार:- एकत्वे द्वित्वं नक्षत्रं पुनर्वसू इति । एकत्वे बहुत्वं नक्षत्रं शतभिषज इति। द्वित्वे एकत्वं गोम इति ।

अर्थके ग्रहण करनेमें समर्थ शब्दनय हैं, क्योंकि, यह नय लिंग, संख्या, काल, कारक, पुरू ष और उपग्रहके व्यभिचारकी निवृत्ति करनेवाल है ।

स्त्रीलिंगके स्थान पर पुल्लिंगका कथन करना और पुल्लिंगके स्थानपर स्त्रीलिंगका कथन करना आदि लिंगव्यभिचार हैं। जैसे ' तारका स्वाति :' तारका स्वाति हैं। इस प्रयोगमें तारका शब्द स्त्रीलिंग हैं और स्वाति शब्द पुल्लिंग हैं, इसलिए स्त्रीलिंगके स्थानपर पुल्लिंग शब्दाका प्रयोग करना लिंगव्यभिचार है। 'अवगम विद्या अवगम विद्या हैं। इस प्रयोगमें अवगम शब्द पुल्लिंग है और विद्या शब्द स्त्रीलिंग हैं, इस लिए पुल्लिंगके स्थानपर स्त्रीलिंग शब्द

कहनेसे लिंगव्यभिचार है। ' वाणी आतोद्यम् ' वाणी आतोद्यम् है । यहांपर वाणी शब्द स्त्रीलिंग है और आतोद्य शब्द नपुंसकल्लिंग है । इसलिए स्त्रीलिंगके स्थानपर नपुंसकल्लिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार हैं। 'आयुधं शक्तिः ' आयुधं शक्ति हैं। यहांपर आयुध शब्द नपुसकलिंग हैं। और शक्ति शब्द स्त्रीलिंग है। इसलिए नपुंसकलिंगके स्थानपर स्त्रीलिंग शब्द कहनेसे पुल्लिंग लिंगव्यभिचार हैं। ' पटो वस्त्रम् ' पटो वस्त्र हें। यहांपर पट शब्द पुल्लिंग है और वस्त्र शब्द नपुंसकलिंग हैं इसलिए पुल्लिंगके स्थानपर नपुंसकलिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार हैं। ' आयुधं परशु ' आयुध फरस हैं यहां पर आयुध शब्द नपुंसकलिंग हैं और परशु शब्द पुल्लिंग हैं। इसलिए नपुंसकलिंगकेस्थानपर पुल्लिंग शब्द कहनेसे लिंगव्यभिचार हैं।

एक वचन आदि की जगह द्विवचन आदिका कथन करना संख्याव्यभिचार हैं। जैसे, नक्षत्र पुनर्वस हैं। यहांपर नक्षत्र शब्द एक वचनान्त हे और पुनर्वसे शब्द द्विवचनान्त हें। इसलिए एक वचनके स्थानमें द्विवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार हैं। नक्षत्र शतभिषजः नक्षत्र शतभिषज हैं । यहांपर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त हैं और शतभिषज शब्द बहुवचनान्त हैं। इसलिए एक वचनके स्थानमें बहुवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचारहैं। गोदौ ग्रामः। गोदौ ग्रामहैं। यहांपर गोदौ शब्द द्विवचनान्त हैं और ग्राम शब्द एकवचनान्त है । इसलिए द्वित्वे बहुत्वं पुनर्वसू पञ्चतारका इति । बहुत्वे एकत्वं आम्राः वनमिति। बहुत्वे द्वित्वं देवमनुष्या उभौ राशी इति । कालव्यभिचारः- पुत्रो जनिता १ (ये हिवैयाकरणव्यहारनयानुरोधेन ' धातुसम्बन्धे प्रत्यया ' इति सूत्रमारम्य विश्वदृश्वाऽस्य पुत्रो जनिता, भविष्यत्कालेनातीतकालेनातीतकालस्याभेदोऽभिमतः, तथा व्यवहारदर्शनादिति । तत्र यः परीक्षायाः मूलक्षतेः कालभेदेऽप्यर्थस्याभेदेऽतिप्रसंगात् रावणशंखचक्रवर्तिनोरप्यतीतानागतकालयोरेकत्वापत्तेः। आसीद्रवणो राजा, शंखचक्रवर्ती भविप्यतीति शब्दयोभिन्नविषयत्वात् नैकार्थतेति चेत्, विश्वदृश्वा जनितेत्यनयाकरपि माभूत् तत एव। न हि विश्वं दृष्टवान इति विश्वदृशि त्वेतिशब्दस्य योऽर्थोऽतीतकास्य जनितेति शब्दस्यानागतका : पुत्रस्य भाविनोऽतीतत्वविरोधात् अतीतकालस्याप्यनागतत्वाव्यपरोपादेकार्थताभिप्रेतेति चेत् तर्हि न परमार्थः- कालभेदेऽप्यभिन्नर्थव्यवस्था । त श्लो. वा. पृ. २७२-२७३.)

भविष्यदर्थे भूतप्रयोग:- भावि कृत्यमासीदिति भुते भविष्यत्प्रयोग इत्यर्थ: साधन-व्यभिचार:, ग्राममधिशेते इति। पुरू षव्यभिचार २ (एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, स यातस्तेपिता इति साधनभेदेपि पदार्थमभिन्नमादृता : प्रहासे मन्य वावि युष्मन्मतेरस्मदेकवच्च इति वचनात् तदपि न श्रेय: परीक्षायां, अहं पचामि, तवं)

एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितेति । उपग्रहव्यभिचार:, रमते विरमति, संतिष्ठते, द्विवचनके स्थानमें एक वचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार हैं पुनर्वसू पंचतारका: पुनवसू पांच तारका हैं। यहांपर पुनर्वसू द्विवचनान्त हैं और पांचतारका शब्द बहुवचनात है। इसलिए द्विवचनान्त स्थानपर बहुवचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार है। ' आम्रा: वनम् आमोंके वृक्ष वन है। यहांपर आम्र शब्द बहुवचनान्त हैं और वन शब्द एकावचनान्त हैं। इसलिए बहुवचनके स्थानपर एकावचनका कथन करनेसे संख्याव्यभिचार हैं । देवमनुष्या उभौ राशी । ' देव और मनुष्य ये दो राशि हैं। यहांपर देव-मनुष्या शब्द बहुवचनान्त हैं और राशी द्विवचनान्त हैं । इसलिए बहुवचनके स्थानपर द्विवचन कथन करना
संख्याव्यभिचार है।

भविष्यत् आदि कालके स्थानपर भूत आदि कालका प्रयोग करना कालव्यभिचार है। जैसे, विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता ' जिसने समस्त विश्वको देख लिया है ऐसा इसके पुत्र होगा। यहांपर विश्वका देखना भविष्यत् कालका कार्य हैं। परंतु उसका भुतकालके प्रयोगद्वारा कथन किया गया हैं। इसलिए यहां पर भविष्यत् कालका कार्य भुतकालमें कहनेसे कालव्यभिचार हैं। इसीतर ' भाविकृत्यमासीत ' आगे होनेवाला कार्य हाक चुका । यहां पर भी भुतकालके स्थानपर भविष्यत् कालका कथन करनेसे कालव्यभिचार हैं।

एक साधन अर्थात् एक कारकके स्थानपर दूसरे कारकके प्रयोग करनेको साधन-व्यभिचार कहते हें। जैसे, 'ग्राममधिशेते ' वह ग्राममें शयन करता हैं। यहांपर सप्तमी कारकके स्थानपर द्वितीया कारकका प्रयोग किया गया हैं, इसलिए यह साधनव्यभिचार है।

उत्तम पुरू षके स्थानपर मध्यम पुरू ष और मध्यम पुरू षके स्थानपर उत्तम पुरू ष आदिके विशति निविशते इति। एवमादयो व्यभिचार न युक्ता:, अन्यार्थस्यान्यार्थेन सम्बन्धाभावत्। ततो यथासंख्यं न्यारय्यमभिधानमिति।

नानार्थसमभिरोहणात्यमभिरू ढ:। १ (स. सि. १,३३,त.रा.वा. १,३३. पर्यायशब्दभेदेन भिन्नर्थस्याधिरोहणात् । नय: समभिरू ढ: स्यात्पूर्ववच्चास्य निश्वय:।। त. श्लो. वा. १,३३,७६. नानार्थान् रू ढ: प्र.क.मा. पृ. २०६. तथाविध्स्य तस्यापि वस्तुन : क्षणवृत्तिनक्ष :। व्रते समभिरू ढस्तु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ।। स.त.टी.पृ. ३१३) इन्दनादिन्द: पूर्दारणात्पुरन्दर: याकनाच्छक्र इति भिन्नार्थवाचकत्वान्नैते: एकार्थवर्तिन:। न पर्यायशब्दा: सन्ति, भिन्नपदानामे-

कथन करनेको पुरू षव्यभिचार कहते हैं। जैसे, एहि मन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता ' आओ , तुम समझते हो कि में रथसे जाऊं गा परंतु अब न जाओगे, तुम्हारा पिता चला गया। यहांपर ' मन्यसे ' के स्थानपर ' मन्ये ' यह उत्तमपुरू षका और ' यास्यामि ' के स्थानपर ' यास्यासि ' यह मध्यमपुरू षका प्रयोग हुआ हें, इसलिये पुरू षव्यभिचार है।

उपसर्गके निमित्तसे परस्मैपदके स्थानपर आत्मनेपद और आत्मनेपदके स्थानपर परस्मैपदके कथन कर देनेको उपग्रहव्यभिचार कहते हें । जैसे, ' रमते ' के स्थानपर ' विरमति ' ' तिष्ठति ' के स्थानपर ' संतिष्ठते ' और विशति के स्थानपर ' निविशते ' का प्रयोग किया जाता है।

इसतरह जितने भी लिंग आदि व्यभिचार पूर्वमें कहे गये है वे सभी अयुक्त है, कयोंकि, अन्य अर्थका अन्य अथके साथ संबन्ध नहीं हो सकता है । इसलिये समान लिंग समान संख्या और समान साधन आदिका कथन करना ही उचित है।

शब्दभेदसे जो नाना अर्थोमें अभिरू ढ होता है। जैसे, इन्दनात् अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली होनेके कारण इन्द ' पूर्दारणात् ' अर्थात् नगरोंका विभाग करनेवाला होनेके कारण पुरन्दर और ' शकनात् ' अर्थात् सामर्थ्यवाला होनेके कारण यक्र । ये तीनों शब्द भिन्नार्थवाचक होनेसे इन्हें

एकार्थवर्ती नहीं समझना चाहिये । इस नयकी दृष्टिमें पर्यायवाची शब्द नहीं होते हैं, क्योंकि, भिन्न पदोंका एक पदार्थमें रहना स्वीकार कर लेनेमें

पचसीत्यत्रापि अस्मद्युष्मत्साधनाभेदेऽप्येकार्थकात्वप्रसंगात्। त. श्लो. वा. पृ. २७३. तथा पुरू षभेदऽपि नैकान्तिकं तद् वस्तु इति, ' एहि मन्ये ' इत्यादि। इति च प्रयोगो न युक्तः, अपि तु ' एहि मन्यसे यथाहं रथेन यास्यामि ' इत्यनेनैव परभावेनैतन्निर्देष्टव्यम् । स.त.पृ. ३१३. ' प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरू त्तम एकवच्च ' पा. १, ४, १०६, एहि मन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता ' इति प्रहासे यथाप्राप्तमेव प्रतिपत्तिः नात्र प्रसिद्धार्थविपर्यास किञ्चिन्निबन्धनमस्ति, ' रथेन यास्यसि , इति भावगमनाभिधानात् प्रहासो गम्यते '। ' नहि यास्यसि' इति बहिर्गमनं प्रतिषिध्यते। अनेकस्मिन्नपि प्रहसितरि च प्रत्येकमेव परिहास इति अभिधान-वशाद् ' मन्ये ' इति एकवचनमेव। लौकिकश्च प्रयोगोऽनुसर्तव्य इति न प्रकारान्तरकल्पना न्याया । ' त्रीणि त्रीणि अन्य-युष्मदस्मदि ' हैम. ३,३,१७.

कार्थवृत्तिविरोधात् । नाविरोध :, पदानामेकत्वापत्तेरिति । नानार्थस्य भाव : नानार्थता तां समभिरू ढत्वात्समभिरू ढ :

एवं भेदे भवनादेवम्भूतः१ (येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीति एवंभूतः । स. सि. १, ३३. त. रा. वा.१. ३३. तत्क्रियापरिणामोऽर्थस्तथैवेति विनिश्चयात् । एवंभूतेन नीयेत क्रियान्तरपराङमुखः । त. श्लो. वा. १. ३३, ७५. एवमित्थं विवक्षितक्रियापरिणामप्रकारेण भूतं परिणतमर्थं योऽभिप्रेति स एवम्भूतो नयः । (क्रियाश्रयेण भेदप्ररू पणमित्थम्भावोऽत्र । टिप्पणी) प्र. क. मा. पृ. २०६. एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते । क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेवंभूतः स . त. टी. पृ. ३१४.) । न पदानां समासोऽस्ति, भिन्नकालवर्तिनां भिन्नार्थवर्तिनां चैकत्वविरोधात् । न परस्परव्यपेक्षात्यस्ति, वर्णार्थसंख्याकालादिभिर्भिन्नानां पदानां भिन्नपदापेक्षायोगात् । ततो न वाक्यमप्यस्तीति सिद्धम् । तत :पदमेकमेकार्थस्य वाचकमित्यध्यवसाय : एवं भूतनयः२ । (एवंभवनादेवंभूतः अस्मिन्नये न पदानां समासोऽस्ति स्वरू पतःकालभेदेन च भिन्नानामेकत्व - विरोधात् । न पदानामेककालवृत्ति : समास : क्रमोत्पन्नानां क्षणक्षयिणां तदनुपपत्ते : नैकार्थे वृत्ति : समास : समास : , भिन्नपदानामेकार्थे वृत्त्यनुपपत्तेः ने वर्णासमासोऽप्यस्ति , तत्रापि

पदसमासोत्क्दोषप्रसंगात् । तत एक एव वर्ण : एकार्थवाचक इति पदगतवर्णमात्रार्थ: एकार्थ :इत्येवंभूताभिप्रायवान् एवंभूतनय :। जयध . अ. पृ. २९ यत्क्रिया विशिष्ट्शब्देनोच्यते , ताभेव क्रियां कुर्वद्वस्त्वेवंभूतमुच्यते । एवंब्देनोच्यते चेष्टाक्रियादिक : प्रकार :, तमेभूतं प्राप्तमिति कृत्वा ततश्चैवंभूतवस्तूप्रतिपादको नयोऽभ्युपगमात्तमेवंभूत: प्राप्त एवंभूत इत्युपचारमन्तरेणापि व्याख्यायते स एवंभूतो नय : अ. रा . कोष. (एवंभूअ)). एतास्मिन्नये एको गोशब्दो नानार्थे न वर्तते, एकस्यैकस्वभावस्य बहुषु वृअत्तिविरोधात् । पदगतवर्णभेदाद्वाच्यभेदस्याद्याद्यवसायकोऽप्ये-

विरोध आता है। यदि यह कहा जाय भिन्न पदोंकी एक पदार्थमें वृत्ति होनेमें वृत्ति कोई विरोध नहीं आता, तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा होने पर समस्त पदोंमें एकत्वकी आपत्ति आती है । इससे यह तात्पर्य निकला कि जो नय शब्दभेदसे अर्थमें भेद स्वीकार करता हैं उसे समभिरुद नय कहते है । नाना पदार्थोंकेभाव अर्थात विशेषताको नानार्थता कहते और उस नानार्थताकेप्रति जो अभिरू ढ है उसे समभिरू ढ नय कहते है ।

एवंभेद अर्थात् जिस शब्द्का जो वाच्य है वह तद्रूप क्रियासे परिणत समयमें ही पाया जाता है । उसे जो विषय करता है उसे एवंभूत नय कहते है । इस नयकी दृष्टिमें पदोंका समास नहीं हो सकता है । क्योंकि , भिन्न भिन्न कालवर्ती और भिन्न भिन्न अर्थवाले शब्दोंमें एकपनेका विरोध है। इसीतरह शब्दोंमें परस्प्रर सापेक्षाता भी नहीं है, क्योंकि , वर्ण , अर्थ, संख्या और कएिर्लंआदि केभेद को प्राप्त हु । पदोकेदूसरे पदोंकी अपक्षा नही बन सकती है । जब कि एक पद दूसरे पदकी अपेक्षा नहीं रखता है तो इस नयकी दृष्टिमें वाक्य भी नहीं बन सकता

वम्भूत :, एवम्भेदे १(एवम्भूते ।) समुत्प्न्नत्वात् । एवमेते संक्षेपेण नया : सप्तविधा:, अवान्तरभेदेन
पुनरसंख्येया : । एते च पुनर्व्यवहर्तृभिरवश्य :, अन्यथार्थप्रतिपादनाव-
गमानुपपत्ते : उत्तं च-

णत्थि णएहि विहूणं सुत्तं अत्थो व्व ण जिण्वरमदाम्हि।

तो ण्य- वादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति २ (नत्थि नएहि विहूणं सुत्तं अंत्थो य जिणमए किंच । आसज्ज उ सोयारं नए नयविसारओ वूआ ६ आ. नि. ६६१. ६८ तम्हा अहिगय - सुत्तेण अत्थ- संपायणम्हि जइयव्वं । अत्थ- गई विय णय -वाद-गहण -लीणा दुराभिगम्मा ३ (सुत्तं अत्थनिमेणं न सुत्तमेत्तेण अत्थपडिवत्ती । अत्थगई उण णयवायगहणलीणा दुरभूगम्मा ६ तम्हा याहिगयसुत्तेण अत्थसंपायणम्मि जइयव्वं । आयरियधीरहत्था हंदि महाणं विलंबेन्ति ६ स. त. ३,६४,६५. ६९

एवं णय -परू वणा गदा । अणुगमं वत्तइस्सामो इ

एत्तो इमेसिं चोद्दसण्हं जीव- समासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ इमाणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति ६ २ ६

है यह बात सिद्ध हो जाती है । इसलिये एक पद एक ही अर्थ वाचक होता है । इस प्रकारके विषय करनेवाले नयको एवंभूतनय कहते है। इस नयकी दृष्टिमें दृष्टिमें एक गो शब्द नाना अर्थोमें नहीं रहता है , क्योंकि, एकस्वभाववालें एक पदका अनेक अर्थोमें रहना विरुद्ध है । तथा - पदमें नहीं रहा है, क्योंकि , एकस्वभाववालें एक पद्का अनेक अर्थोमें रहना विरुद्ध है। क्योकि भेदसे वाच्यभेदका निश्चय करानेवाला भी एवंभूतवय है, क्योंकि , यह नय इसप्रकारके भेदमें उत्पन्न हुआ है । इस तरह ये नय संक्षेपसे सात प्रकारके और अवान्तर भेदोंसे असंख्यात प्रकारके समझाना चाहिये । व्यवहारकुशल लोगोंको इन नयोंका स्वरू प अवश्य समझ लेना चाहिये । अन्यथा, अर्थात, नयोंके स्वरू पको समझे बिना पदार्थोंके स्वरू पका प्रतिपादन और उसका ज्ञान अथवा पदार्थोंके स्वरू पके प्रतिपादनका ज्ञान नहीं हो सकता है । कहा भी है -

जिनेन्द्रभगवानके मतमें नयवादके विना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है , इसलिये जो मुनि नयद्र वादमें निपुण होते हैं वे सच्चे सिद्धान्तके ज्ञाता समझने चाहिये । अत : जिसने सूत्र अर्थत् परमागमको भलेप्रकार जान लिया हैं उसे ही अर्थसंपादनमें अर्थात् नय और प्रमानके द्वारा पदार्थके परिज्ञान करनेमें प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि, पदार्थोंका परिज्ञान भी

नयवादरू पी जंगलमें अन्तर्निहित है अतएव दुरधिगम्य अर्थात् जाननेके लिये कठिन है ६८, ६९ इस तरह नयप्ररू पणाका वर्णन समाप्त हुआ ।

अबनुगमका और निरू पण करते हैं ।

इस द्रव्यश्रुत और भावश्रुतरू प प्रमाणसे इन चौदह, गुण्स्थानोंके अन्वेषणरू प प्रयोजनके होने पर वहां ये वौदहा ही मार्गणास्थान जानने योग्य है ७२

' एत्तो ' एतस्मादित्यर्थ : कस्मात् । प्रमाणात् कुत। एतदवगम्यते ? प्रमाण्स्य जीवस्थानस्याप्रमाणादवतारविरोधात् । नाजलात्मकहिमवतो निपतज्जलात्मकागङ्गया व्यभिचार :, अवयविनोऽवयवस्यात्र वियो्गापायस्य विवक्षितत्वात् । नावयविनोऽवयवो भिन्नो विरोधात । तदपि प्रमाणं द्विविधं द्रव्यप्रमाणात संख्येया -

'एत्तो ' अर्थात् इससे ।

शंका -- यहां पर ' एतद् ' पदसे किसका ग्रहण किया है ?

समाधान-- यहां पर 'एतद्' पदसे किसका ग्रहण किया है इसलिये 'इससे' अर्थात् ' प्रमाणसे ' ऐसा अभिप्राय समझना चाहिये ।

शंका -- यह कैसे जाना, कियहां पर 'एत्तो ' पद्का 'प्रमानसे ' यह अर्थ लिया गया है ?

समाधाना क्योंकि , प्रमाणरू प जीवस्थानका अप्रमानसे अवतार अर्थात उत्पत्ति नहीं हो सकती है, इससे यह जाना जाता है कि यहां पर 'एत्तो 'इस पदमें स्थित 'अ एतत् ' शब्दसे प्रमाणका ग्रहण किया गया है ?

यहां पर यदि कोई यह कहे कि कायमें कारणानुकूल ही गुणधर्म पाये जाते हैं , क्योंकि , वह कार्य है। इस अनुमानमें जो कार्यत्वरू प हेतु है वह प्र्मान के रुप कारनसे उत्पन्न हुय प्रमात्यक जीव स्थानरुप साध्यमें पाया जाता है, और अजलस्वरू प हिमवानसे उत्पन्न हुई जलात्मक गंगानदीरू प विपक्षमें भी पाया जाता है। अवेव इस कार्यत्वरू प हेतुके पक्ष्में रहते हुए भी विपक्षमें चले जानेके कारण व्यभिचार दोष आता है। अत: यह कहना कि प्रमाणरू प जीवस्थानकी उत्पत्ति प्रमाणसेही हुई है, संगत नहीं है। इस शंकाको मनमें निश्चय करके आचार्य आगे उत्तर देते हैं कि इस तरह अजलात्मक हिमवानसे निकलती हुई जलात्मक

गंगानदीसे भी व्यभिचार दोष नही आता है, क्योंकि, यहां पर अवेयवीसे वियोगापायरू प अर्थात् अवयवीसे संयोगको प्राप्प्त हुआ अवयव विवक्षित है। इसका कारण यह हैं किअवयवीसे अवयव भिन्न नही हैं, क्योंकि, अवयवीसे अवयवको सर्वथा भिन्न मान लेनेमें विरोध आता है।

विशेषार्थ-- यद्यपि हिमवान् पर्वत अजलात्म्क है। पंरतु । उस पर्वतके जिस भागसे गंगा नदी निकली है, वह भाग जलमय ही है। इसीलीय यहां पर हिमवाम पर्वतसे उसका जलात्मक अवयव ग्रहन करना चाहिये इससे जो पहले व्यभिचार दोष दे आये है वह दोष भी नहीं आता है , क्योकि यहा पर हिमवान् पर्वतका जलात्मक भाग ही ग्रहण किया गया है, और उससे गंगा नदी निकली नदी निकली है। अतएव इसे विपक्ष न समझकर सपक्ष ही समझना चाहिये । इस तरह सिद्ध हो जाता है कि प्रमाण्स्वरू प जीवस्थानकी उत्पत्ति ही हुई है प्रमानसे।

द्रव्यप्रमाण और भावप्रमाणके भेदसे वह प्रमाण दे प्रकारका है। द्रव्यप्रमाण्की अपेक्षा शब्द, प्रमातृ और प्रमेयके आलम्बनसे क्रमशः संख्यात, असंख्यात और अनंतरू प द्द्रव्यजीव-संख्येयानन्तात्मकद्रव्यजीवस्थानस्यावतार :। भावप्रमाणं पञ्चविधम् :-आभिणि - बोहियभावपमाणं , सुदभावपमाणं अओहिभावमाणं मण्पज्जवभावपमाणं केवलभाव- पमाणं चेदि ।

तत्थ आभिणिबोहियणाणं णाम पंचिंदिय -णोइंदिएहि मदिणाणावरण -खयो वसमेण य जणिदोग्गहेहावाय १ (मु . जणीदोवग्घे।)धारणाओ सद्द- परिस्स -रस-रू व- गंध - दिट्ठ-सुदाणूभूद- विसयाओ बहुबहुविह - खिप्पाणिस्सिदाणुत्त- धुवेदर- भेदेण- ति- सय- छत्तीसाओ । सुदाणाणाम मदि -पुव्वं मदिणाण -पडिगाहियमत्थं मोत्तूणण्णत्थम्हि वावदं सुदणाणावरणीय -कखओवसम -जाणदि ओहिणणा णम दत्त वखेत्त-कालभाव -वियप्पिय पांग्गल दव्व पच्चक्य जानदि। दव्वदो२(मु. दव्वादो।) जहण्णेण जाणंतो एयजीवस्स ओरालिय- सरीर संचयं लेगागास-पदेस -मेत्ते खंडे कदे तत्थेय -खंड जाणदि खेत्तदो। उक्कस्सेणेग- परमाणुं जाणदि । दोण्हमंतरालमजहण्णमणुक्कस्सोहीं जाणदि । जहण्णेणंगुलस्स असंखेज्जदिभागं

स्थानका अवतार हुआ है। भावप्रमाणके पांच भेद हैं, अभिनिबोधिकभावप्रमाण, श्रुतभावप्रम्ण , अवधिभाप्रमाण ,मन :पर्ययभावप्रम और केवलभावप्रमाण ।

उनमें पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे तथा मतिज्ञ नावरण कर्मके क्षयोपशमसे पैदा हुआ , अवग्रह ,ईहा अवाय और धारणारू प तथा शब्द, स्पर्श, रस, रू प, गन्ध और दृष्ट, श्रुत तथा अनुभूत पदार्थको विषय करनेवाला और बहु, बहुविध, क्षिप्र , अनि:सृत अनुक्त ,ध्रुव , एक , एकविध, अक्षिप्र, नि:सृत, उक्त और अध्रुवके भेद्से भेदसे तीनसौ छत्तीस भेदरू प आभिनिबोधिक मतिज्ञान होता है।

जिस ज्ञानमें मतिज्ञाल कारण पडता है, जोमतिज्ञानसे ग्रहण किये गये पदार्थको छोडकर तत्संबन्धित दुसरे पदार्थमें व्यापार करता है और श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है उसे श्रुतज्ञान कहते है।

द्रव्य ,क्षेत्र काल और भावके विकल्पसे अनेक प्रकारके पुद्गलद्रव्यको जो प्रत्यक्ष जानता है उसे अवधिज्ञान कहते है। यह ज्ञान द्रव्यकी अपेक्षा जधन्यरू पसे जानता हुआ एक जीनके औदारिक शरीरके संचयके लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण खण्ड करने पर उनमेंसे एक खण्ड कको जानता है । उत्कृष्टरू पसे , अर्थात् उत्कृष्ट अवधिज्ञान एक परमाणुतकको जानता है। अजधन्य और अनुत्कृष्ट अर्थात् मध्यम अवधिज्ञान जधन्य और उत्कृष्ट्के अन्तरालगत द्रव्य भेदोंको जानता है। क्षेत्रकी अपेक्षा अवधिज्ञान जधन्यसे अंगुल, अर्थात उत्सेधागुंलके असंख्यातवें भाग क्षेत्रको जानता है। उत्कृष्टसे असंख्यात लोकप्रमाण क्षेत्रको जानता है। अजध्न्य और अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवधिज्ञान जध्न्य और उत्कृष्ट्के अन्तरा लगत क्षेत्रभेदोंको जानता है। अवधिज्ञान कालकी अपेक्षा जधन्यसे आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण भूत और भविष्यत् पर्यायोको जानता है। उत्कृष्टसे असंख्यात लोकप्रमाण समयोंमें स्थित अतीत और अनागत जणदि उक्कस्सेण असंखेज्ज- लोगमेत्त-खेत्ते -जाणदि । दोण्हमंतरालमजहण्णमणु क्कस्सोहि जाणादि । कालदो जहण्णेण आ वलियाए असंखेज्जदि- भागे भूदं भविस्सं च जाणादि । उक्कस्सेण असंखेज्जलोगमेत्त इ समएसु अदीदमणाग्ण्यं च जाणादि । दोण्हं पि विच्चालमजहण्ण - अणुक्कस्सोही जाणादि । भावदो पुव्व- णिरू विद- द्व्वस्स सर्त्ति जाणदि १। (णोकम्मुरालसंचं मजिझमजोगज्जियं सविस्सच्यं । लोयविभतं जाणादि अवरोही दव्वदो णियमा ९ सुहुमणिगोद

अपज्जत्तयस्स जादस्स तिदयसामयम्हि । अवरोगहणमाण जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ं आवलिसंख भागं तीदभविस्सं च कालदो अवरं । ओही जाणदि भावे कालसंखेज्जभागं तु ं सव्वावहिस्स एक्को परमाणु होदि णिव्वियप्पो सो । गंगामहाणइस्स पवाहो व्व धुवो हवे हारो ं परमोहिदव्वभेदा जोत्तियमेत्ता हुतेत्तिया होंति । तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ं आवलि असंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया । कालस्स जहण्णादो असंखगुणहिणमेत्ता हु ं सव्वोहि त्ति कमसो आवलि असंखभागगुणिदकमा . दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ं गो। जि. ३७७, ३७८, ३८२, ४१५, ४१६ , ४२२, ४२३ , तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताइं रू विदव्वाइ जाणइ पासइ उक्कोसेणं सव्वइं रुविदव्वाइं जाणि पासइ।खित्तओ णं ओहीवाणी जहण्णेणं अगुलरस असंखिज्जइ जानइ पासइ उक्कोसेणं असखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणामित्ताइं खंडइ जाणिइ पासइ । कालओ ण ओहिनाणी जहन्नेणं आवलिआए असंखिज्जाइभाग जाणइ पासई उक्कोसेण असांखिज्जाओ उस्सप्पिणी ओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च काल जाणइ पासइ। भावओ ण ओहिनाणी जाहन्नेण अणंते भावे जाणइ पासइ उक्कसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ ,सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ । न. सू. १६.)

मणपज्जवणाणं णाम पर- मणो -गयाइ मुत्ति - दव्वाइं तेण मणेण सह पच्चकस्वं जाणदि । दव्वदो जहण्णेण एग समय- ओरलिथ -सारिस -णिज्जर, उक्क्रसेन एग - समय -पडिबद्धस्स कम्मइय दव्वस्स अणंति -भागं जाणदि । खेत्तदो जहण्णेण गाउव- पुधत्तं , उक्कस्सेण माणुस- खेत्तस्संतो जाणदि , णो बहिद्धा । कालदो जहण्णेण

पर्यायोंको जानता है। अजाधन्य और अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवधिज्ञान, जधन्य और उत्कृष्टके अन्तरालगत कालभेदोंकों जानता है । भावकी अपेक्षा अवधिज्ञान पहले निरू पणा किये गये द्रव्यकी शक्तिको जानता है।

जो दूसरोंकेमनोगत मूर्तोक द्रच्योंका उस मनकेसाथ प्रत्यक्ष जानता है उसे मनं :पर्यय - ज्ञान कहते है। मन :पर्ययज्ञान द्रव्यको अपेक्षा जधन्यरू पसे एक समयमें होनेवाले औदारीक शरीरके निर्जरारू प द्रव्यको जानता । उत्कृष्टरू पसे कार्माणद्रव्यके अर्थात आठ कर्मोके एक

समयमें बंधे हुए समयप्रबद्धरू प अर्थत् दो, तीन कोस क्षेत्रको जानता है , द्रव्यके अनन्त भागोंमेंसे एक भागको जानता है ।, क्षेत्रकी अपेक्षा जधन्यरू पसे गव्यूतिपृथक्त्व, अर्यात दो, तीन कोस क्षेत्रको जानता है क्षेत्रकी अपेक्षा जधन्यरू पसे गव्यूतिपृअक्त्व , और उत्कृष्टुरुपसे मनुष्यक्षेत्रके भीतर जानता है, मनुष्यक्षेत्रमे बहिर नहिं जानता है। (यहांपर मनुष्यक्षेत्रसे प्रयोजन विष्कम्भ्ररुप मनुष्यक्षेत्र से है , वृत्तरू प मनुष्यक्षेत्रसे नहीं है।) कालकी अपेक्षा जघन्य रू पसे दो तीन भवोंको ग्रहण करता है, और उत्कृष्टरू पसे असंख्यात भवोंको ग्रहण करता है,

दो तिण्ण भव - ग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भव - ग्गहणाणि जाणदि १। (अत्र भावापेक्षया मन: पर्ययज्ञानस्य विषयो नोपलम्यते । अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जण्ण्स मयबद्धं तु । चक्खिदियणिज्जण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ं मणदव्ववग्गणाणमणंतिसोभागेण उजुगउक्कस्सं । खडिंदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्व ं अट्ठण्ह कम्माणं समयपबद्ध विविस्ससोबचयं । धउवहारे णिगिवार भजिदे विदियं हवे दव्व ं तव्वदियं कप्पाण्मसंखेजाणंच समयसंखसमं धवहारेण्वहरिदे होदि हु उक्क्रसय दव्व "तव्विदिय कप्पाण्मसंखेज्जाण्ण च समयसंखेसमं ं धुवट्ठारेणवट्ठरिदे होदि हु उक्करसयं दव्वं" ं गाउयपुधत्तमवर उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं । विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्त ं वर खु णरलोयं ंणरलोए त्ति य वयण विक्खंभणियामंय ण वट्टस्स । जम्हा तग्धणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठ ं दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्क्स्सं। अड्ण्वभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ंआवनिसंख्भागं अवरं च वर च वरम्संखगुंणा तत्तो असंख्गुणिंद असंखलोगंतुविउलमदी ं "आवनिअसंखभाग अवर च वरं च वरसंखगणं ंतत्तो असंखगुणिदं असंखलोगंतु विउलनमदि " गों जी . ४५१-४५८.. तत्थ दव्वओ. णं उज्जुमई णं अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ तं चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्धतराए वितिमिरतराए जाणइ पासई तं चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराय जाणइ पासइ खत्तोओण उज्जुमई अगुलरस असंखेज्जयभाग जहन्नेणं जाव जोइसस्स उवरिमतले तिरियं जाव अतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छ्प्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचेदिआण पज्जत्तयाण मणोगए भावे जाणि पासइ । तं चेव विउसमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहिअतरं ं विउलतर विसुद्धतंर वितिमिरतरगं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णंउज्जुमई जहन्नेणं पलिओ वमस्स असांखिज्जइभागं , उक्केसेण

विपलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणि । भावओ णं उज्जुमई जहन्नेणं अणंते भावें जाणि पासई, उवकोसेण सव्वभावाणं अणंतभगं जाणि पासई । तं चेव विउलमई अब्भहियतराग़ं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ । नं. सू. १८) । केवलणाण णाम सव्वदव्वणि तीदाणागय २ (मु. अदीदाणागय।) वट्टमाणाणि सपज्जयाणि पज्जक्खं जाणदि ।

एत्थ किमाभिणिबोहिय पयाणादो किं सुद- पमाणदो , किमोहि -पमाणदो, किंमणपज्जव- पमाण्दो किं केवल -पमाणादो ? एव ं पुच्छा सव्वेसिं। एवं पुच्छदे णो आभिणबोहिय , पमाणादो , णो ओहि -अपमाणादो , णो मणपज्जव- पमाणादो । गंथं पडुच्च सुद -पमाणादो अत्थदो केवल - अपमाणादो ।

भवोंको ग्रहण करता है, अर्थात् जानता है। (भावकी अपेक्षा मन: पर्यय ज्ञान पहले निरू पण किये गये द्रव्यकी शक्तिको जानता है ।)

यहा , पर क्या आभिनिबोधिक प्रमाण्से प्रयोजन है, कया श्रुतप्रमाणसे प्रयोजन है, क्या अवधिप्रमाणसे प्रयोजन प्रयोजन है, क्या मन: पर्ययप्रमाणसे प्रयोजन हैं अथवा क्या केवलप्रमाण्से प्रयोजन है? इसतरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये और इसतरह पूंछे जा नेपर , यहांपर न तो आभिनिबोधिकप्रमाण्से प्रयोजन है, न अवधिप्रमाण्से प्रयोजन है, और न मन: पर्ययप्रमाण्स प्रयोजन है किंतु ग्रन्थकी अपेक्षा श्रुतप्रमाण्से और अर्थकी अपेक्षा केवलप्रमाणसे प्रयोजन है,

एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दव्व- भाव सुंद पडुज्ज बिदियादो , अत्थं पडुज्ज पंचमादो केवलणाणादो पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमानो दव्व -भाव सुंद पडुच्च चउत्थादो - केवलणादो । पच्छाणुणुव्वीए गणिज्जमाणे दव्व- भाव -सुंद पडुच्च चउत्थादो सुद- -पमाणदो , अत्थं पडुच्च पढमादो केवलादो जत्थतणुव्वीए गणिज्जमादो केवलणाणादो य ं सुदणाणमिदि गुणणामं , अक्खर -पद संधाद- पडिवत्तियादीहि संखेज्जमत्थदो अण्तं । एदस्स तदुभयवत्तव्वदा ।

अत्थाहियारो दुविहो - अंगबाहिरो अंगपइटठो चेदि , तत्थ अंगबाहिरस्स चैद्दस अत्थाहियारा । तं जहा -सामाइयं चउवीसत्थओ वंदणा पडिक्कमणं वेणइयं किदियम्मं दसवेयालिय१ (क. दसवेयालिया।) उत्तरज्झयणं कप्पववहारो कप्पाकप्पियं महाकप्पियं पुंडरीयं महापुंडरीयं णिसीहिय२(मू . णिसिहियं ।) चेदि । तत्थ जं सामाइयं तं णाम -ड्ढवणा -दव्वक्खेत्त -काल -भावेसु ३(प्रतिषु'सम्मत्त' इतिपाठः।)समत्त- विहाणं वण्णेदि । चउवीसत्थओ चयवीसण्ह तित्थयर- रांण वंदन -विहाण तण्णाम - संठाणुर्से - पंच- महा- कल्लाण - चोतीस - अइसय इ सरू वं - तित्थयर सहलत्तं च वण्णोदि । वंदण एग- जिण -जिणालय- विसय -वंदणाए णिरवज्ज-भावं वण्णेइ ।

ऐसा उत्तर देना चाहिये।

यहांपर पूर्वानुपूर्वासे गण्ना करनेपर द्रव्यश्रुत और भावश्रुतकी अपेक्षा तो दूसरे श्रुतप्रमाण्से प्रयोजन है पश्चादनु पूर्वीसे गनना करनिपर द्रव्यदुत और भावश्रुतकी अपेक्षा चैथे श्रुतप्रमानसे और अर्थकी अपेक्षा पांचवें केवलज्ञानप्रमाण्से प्रयोजन है और अर्थ्की अपेक्षे प्रथम केवलप्प्रमाण्से प्रयोजन है । यथातथानुपूर्वोसे गण्ना करनेपर श्रुतप्रमाण और केवलप्रमाण है इन दोंनोसे और देनोंसे प्रयोजन है।

श्रुतज्ञान यह सार्थक नाम है। वह अक्षर , पद, संधात और प्रतिपत्ति आदिकी अपेक्षा संख्यातभेदरू प है और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है।

तीन वक्तव्यताओंमेंसे इस - श्रुतप्रमाणकी तदुभर्यवक्तव्यता (स्वसमय - परसमयवक्तव्यता) जानना चाहिये।

अर्थधिकार दो प्रकारका है- अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट । उन दोनोंमेंसे , अंगबाह्यके चौदह अर्थाधिकार है। वे इसप्रकार है- सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दना प्रतिक्रमण , वौनयिक, कुतिकर्म , दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार , कल्पाकल्प, महाकल्प पुण्डरीक महापुण्डरीक और निषिद्धिका। उनमेंसे , सामायिक नामका अंगबाह्य अर्थधिकार नां , स्थापना द्रव्य , क्षेत्र, काल और भाव इन छह भेदों द्वारा सअमताभावके विधानके विधानका वर्नन करता है ।

चतुर्विंशतिस्तव अर्थाधिकार यस उस कालसंबन्धी चौवीस तीर्थकरोंकी वन्दना करने की विधि उनके नाम संस्थान उत्सेध पांच महाक लयाणक चौतीस अतिशयोंके स्वरुप और तीर्थकरोकी वन्दनाकी सफ़लताका वर्ण्न करता है ।

पडिक्कमणं कालं प्पुरिसे १ (मु. पुरिसं च । क. पुरू से च।) यस्सिऊण सत्तविह -पडिक्कमणाणि वण्णेइ २। (प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमणम् । तच्च दैवसिकरात्रिक पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकोर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविधम् । भरतदिक्षेत् दुः षमादिकालं षट्संहनन समन्वितस्थिरास्थिरदिपुरू षभेदांश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणम् ।गो. जी. जी. प्र. , टी. ३६७. वेणइयं णाण दंसण -अचरित्त तवोवयारविणए वण्णेइ । किदियम्मं अरहंत-सिद्ध आइरिय -बहुसुद साहूणं पूजाए ३(मु. पूजाविहाणं वण्णेइ। कृते क्रियाया कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यत इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुधुत्व तसाध्वदिनवदेवतावंदनानिमित्तमात्माधीनताप्रदक्षिणयत्रिवारत्रिनतिचतुः शिरोद्वादशाव र्तादिक्तक्षणानित्यनौमित्तिकक्रियाविधान च वर्णयतिय । गो. जी .जी प्र। टी. ३६७.) विहाणं वण्णेइ । दसवेयालियं आयार । -गोयार ४ (मु गोयर- । आचारो मोक्षार्थमनुष्ठानविशेषस्तस्य गोचरो विषय आचारगोचर (आचा ० ७ अ १ उ.) आचारत्र्व ज्ञानादिविषय पञ्चधा, गोचरत्र्व भिक्षाचर्येत्याचारगोचर ज्ञानाचारादिके भिक्षाचर्यायां च (नं.) XX आचार श्रुतज्ञानादिविषयमनुषठानं कालाध्यनादि , गोचरो भिक्षाटनम् एतयो समाहारद्वन्द्वः आचारगोचरम् (भ. २ श. १ उ.) अभि रा. को. (आयारगोयर) विहिं वण्णोई ५ (विशष्टा काला विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दश वैकालिकानि वर्ण्यन्तेऽस्मिन्निति दशवैकालिकम् । तच्च मुनिजनानां आचरणगोचरविर्धि पिणडशुद्धिलक्षणं चवर्णति । गो. जी., जी. प्र. टी. ३६७ तेषु दशाद्धायनेषु किमित्याह, पढ्मे धम्मपसंसा सो य इहेव जिणसासणम्हि त्ति । विइए धिइए सक्का काउं जे एस धम्मोत्ति[६] (तइए आयारकहा उ खुड्डिया आयसंणमोवाओ ।) तह जीवसंजमो विय होइ चउत्थम्मि अज्झयणे [६] भिक्खविसोही तवसे जमस्य गुनकारिया उ पचमय छाटठेआयारका महई जोग्गा महयन रस वयणविभत्ती पुण सत्तमम्मि पणिहाणभट्ठमे भणियं । णवमे विणओ दसमे समाणियं एस भिक्खु त्तिंअभि. रा.को. (दसवेयालिय)। उत्तरज्झयणं उत्तर- पदाणि वण्णेइ ६ उत्तराणि अधीयंते पठ्यंते अस्मिन्निति उत्तराध्ययनम् । तच्च चतुर्विधोपसर्गणिं द्वार्विशति-। कप्पववहारो साहूणं जोग्गमाचरणं अकप्प- सेवणाए

वन्दना नामका अर्थाधकार एक जिनेन्द्रदेवसंबन्धी और उन एक जिनेन्द्रदेवके अवलम्बनसे जिनालयसंबन्धी वन्दनाके निरवध्यभावका अर्थात् प्रशस्तरू प भावका वर्णन करता है। (प्रमादकृत दैवसिक,आदि दोषोंका निराकरण जिसके द्वारा किया जाता है उसे प्रतिक्रमण कहते है। वह दैवासिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और औत्त मार्थिकके भेदसे सात प्रकारका है।) प्रतिकमण नामका अर्थाधिकार, दु: मादि काल और च्छ्ह संहनन्से युक्त स्थिर तथा अस्थिर स्वभाववाले पुरुषोंके आश्रय लेकर इन सात प्रकारके प्रतिक्रणोंका वर्णन करता है। दर्शनविय चारित्र विनय , तपविनय और उपचारविनय इसतरह इन पांच प्रकारकी विनयोंका वर्णन करता है। कृतिकर्म नामका अर्थाधिकार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपध्यय और साधुकी पूजा आदिकी विधिका वर्णन करता है। विशिष्ट कालको विकाल कहते हैं। उसमें जो विशेषता होती है उसे वैकालिकोंका कहते है। वे वैकालिक दश हैं। उन दश वैकालिलोंका दशवैकालिक नामका

पायच्छित्तं च वण्णेइ । कप्पाकप्पियं साहूणं जं कप्पदि जं च ण कप्पदि तं सव्वं वण्णेदि । महाकप्पियं काल-संघडणाणि अस्सिऊण साहु-पाओग्ग-दव्व-खेत्तादीणं वण्णणं कुणइ । पुंडरीयं चउव्विह-देवेसुववादकारण-अणुट्ठाणाणि वण्णेइ । महापुंडरीयं सयलिंद-पडिइंदेसु १(मु. पडिइंदे ।) उप्पत्ति-कारणं वण्णेइ । (२ मु. निबिहियं ।) णिसीहियं बहुविह-पायच्छित्त-विहाण-वण्णणं कुणइ (३ निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धि:
संज्ञायां कप्रत्यंये निषिद्धिका । तच्च प्रमाददोषविशुद्धयर्थं बहुप्रकारं प्रायश्चित्त वर्णयति । गो.जी., जी.प्र., टी. ३६८.) ।

अर्थाधिकार वर्णन करता हैं । तथा वह मुनियोंकी आचारविधि और गोचरविधिका भी वर्णन करता हैं । जिसमें अनेक प्रकारके उत्तर पढनेको मिलते हैं उसे उत्तराध्ययन अर्थाधिकार कहते हैं । यह चार प्रकारके उपसर्गोंको कैसे सहन करना चाहिये ? बाईस प्रकारके परीषहोंके सहन करनेकी विधि क्या हैं ? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरोंका वर्णन करता हैं । कल्पव्यवहार साधुओंके योग्य आचरणका और अयोग्य आचरणके होने पर प्रायश्चित्तविधिका वर्णन करता हैं । कल्प नाम

योग्यका हैं और व्यवहार नाम आचारका हैं । कल्पाकल्प द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा मुनियोंके लिये यह योग्य हैं और यह अयोग्य हैं, इसतरह इन सबका वर्णन करता हैं । महाकल्प काल और संहननका आश्रय कर साधुओंके योग्य द्रव्य और क्षेत्रादिकका वर्णन करता हैं । (इसमें, उत्कृष्ट संहननादि-विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका आश्रय लेकर प्रवृत्ति करनेवाले जिनकल्पी साधुओंके योग्य त्रिकालयोग आदि अनुष्ठानका और स्थविरकल्पी साधुओंकी दीक्षा, शिक्षा, गणपोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना आदिका विशेष वर्णन हैं ।) पुण्डरीक भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी इन चार प्रकारके देवोंमें उत्पत्तिके कारणरुप दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यग्दर्शन और संयम आदि अनुष्ठानोंका वर्णन करता हैं । महापुण्डरीक समस्त इन्द्र और प्रतीन्द्रोंमें उत्पत्तिके कारणरुप तपोविशेष आदि आचरणका वर्णन करता हैं । प्रमादजन्य दोषोंके निराकरण करनेको निषिद्धि कहते हैं, और इस निषिद्धि अर्थात् बहुत प्रकारके प्रायश्चित्त के प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको निषिद्धिका कहते हैं ।

परीषहाणां च सहनविधानं तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति । गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३६७. कम. उत्तरेण पगयं आसारस्सेव उवरिमाइं तु । तम्हा उ उत्तरा खलु अज्झयणा होंति णायव्वा ।। अभि. रा. को. (उत्तरज्झयण) कानि तान्युत्तरपदानीति चेदुच्यते छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा- १ विणयसुयं २ परीसहो ३ चाउरंगिज्जं ४ असंखयं ५ अकाममरणिज्जं ६ पुरिसविज्जा ७ उरब्भिज्जं ८ काविलियं ९ नमिपव्वज्जा १० दुमपत्तयं ११ बहूसुयपूजा १२ हरिएसिज्जं १३ चित्तसंभूयं १४ उसुयारिज्जं १५ सभिक्खुगं १६ समाहिट्ठाणाइं १७ पावसमणिज्जं १८ संजइज्जं १९ मियाचारिया २० अणाहपव्वज्जा २१ समुद्दपालिज्जं २२ रहनेमिज्जं २२ गोयमकेसिज्जं २४ समितीओ २५ जन्नइज्ज्ं २६ सामायारी २७ खलुंकिज्जं २८ मोक्खमग्गगई २९ अप्पमाओ ३० तवोमग्गो ३१ चरणविही ३२ पमायट्ठाणाइं ३६ कम्मपयडी ३४ लेसज्झयणं ३५ अणगारमग्गे ३६ जीवाजीवविभक्ती य । सम. सू. ३६.

अंगपविट्ठस्स अत्थाधियारो बारसविहो । तं जहा-आयारं १(मू. आयारो.) सूदयदं ठाणं समवायो वियाहपण्णत्ती णाहाधम्मकहा (२ मू. णाह.) उवासयज्झयणं अंतयडदसा

अणुत्तरोववादियदसा पण्हवायरणं विवागसुत्त दिट्ठिवादो चेदि । एत्थायारंगमट्ठारह-पद-सहस्सेहि १८०००--

कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सए ।

कधं भुंजेज्ज भासेज्ज कधं पावं ण बज्झई (३ मूलाचा. १०१२,१०१३. दशवै. ४,७,८.) ।।७०।।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सए ।

जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई ।। ७१ ।।

एवमादियं मुणीणमायारं वण्णेदि (४ आयारे णं समणाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-ट्ठाण-गमण-चंकमण-पमाण-जोग-जुंजण-भासा-समिति-गुत्ती-सेज्जोवहि-भत्त-पाण-उग्गम-उप्पायण-एसणा-विसोहि-सुद्धासुद्धग्गहण-वय-णियम-तवोहाण-सुप्प-सत्थमाहिज्जइ । सम. सू. १३६.) ।

सूदयदं णाम अंगं छत्तीस-पय-सहस्सेहि ३६००० णाणविणय-पण्णावणा-कप्पा-कप्प-च्छेदोवट्ठावण-ववहारधम्मकिरियाओ परुवेइ ससमय-परसमय-सरुवं च परुवेइ (५ सुअगडे णं ससमया सूइज्जंति, परसमया सूइज्जंति, ससमयपरसमया सूइज्जंति X X । सूअगडे णं जीवाजीव-पुण्ण-पापासव-संवर-णिज्जरण-बंध किच्चा मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति समणाणं अचिरकाल-पव्वइयाणं कुसमयमोह-मोहमइ-मोहियाणं संदेह-जाय-सहजबुद्धि-परिणाम-संमइयाण पावकरमलिन-मइ-गुण-विसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स चउरासीए अकिरियावाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं बत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठिंठयसयाणं वूहं ससमए ठाविज्जंति X X X । सम. सू. १३७.) ।

अंगप्रविष्टके अर्थाधिकार बारह प्रकारके हैं । वे ये हैं- आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अंत:कृद्दशा, अनुत्तरौपपादिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद । इनमेंसे, आचारांग अठारह हजार पदोंकेद्वाराइ

किस प्रकार चलना चाहिये ? किस प्रकार खडे रहना चाहिये ? किस प्रकार बैठना चाहिये ? किस प्रकार शयन करना चाहिये ? किस प्रकार भोजन करना चाहिये ? किस प्रकार

संभाषण करना चाहिये और किस प्रकार पापकर्म नहीं बंधता हैं ? (इसतरह गणधरके प्रश्नोंके अनुसार) यत्नसे चलना चाहिये, यत्नपूर्वक खडे रहना चाहिये, यत्नसे बैठना चाहिये, यत्नपूर्वक शयन करना चाहिये, यत्नपूर्वक भोजन करना चाहिये, यत्नसे संभाषण करना चाहिये । इस प्रकार आचरण करनेसे पापकर्मका बंध नहीं होता हैं ।। ७०-७१ ।। इत्यादि रुपसे मुनियोंके आचारका वर्णन करता हैं ।

सूत्रकृतांग छत्तीस हजार पदोंके द्वारा ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहारधर्मकियाका प्ररुपण करता हैं । तथा यह स्वसमय और परसमयका भी निरुपण ठाणं णाम अंगं वायालीस-पद-सहस्सेहि ४२००० एगादि-एगुत्तर-ट्ठाणाणि वण्णदि (१ ठाणे णं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पयत्थाणं X X एक्कविहवत्तव्वयं दुविह जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परुवणया आघविज्जंति X X । सम.सू. १३८.) । तस्सोदाहरणं--

एक्को चेय महप्पो सो दुवियप्पो ति-लक्खणो भणिओ ।
चदु-संकमणा-जुत्तो पंचग्ग-गुण-प्पहाणो य ।। ७२ ।।
छक्कावक्कम-जुत्तो कमसो सो सत्त-भंगि-सब्भावो ।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दस-ठाणियो भणियो (२ पञ्चा. ७१, ७२. संग्रहनयेन एक एवात्मा । व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्प: । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षण: । कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रमतीति चतु:संक्रमणयुक्त: । औपशमिकक्षायिक-क्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधान: । पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्त: । स्यादस्ति स्यान्नास्ति X X इत्यादिसप्तभंगीसभदावेऽप्युपयुक्त: । अष्टविधकर्मास्त्रव-युक्तत्वादष्टास्त्रव: । नवजीवाजीवास्त्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरुपा अर्था: पदार्था: विषया: यस्य स नवार्थ: । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतु:पंचेन्द्रियभेदाद् दशस्थानका: । गो.जी., जी.प्र.,टी. ३५६.)

करता हैं । स्थानांग ब्यालीस हजार पदोंके द्वारा एकसे लेकर उत्तरोत्तर एक एक अधिक स्थानोंका वर्णन करता हैं । उसका उदाहरणइ

महात्मा अर्थात् यह जीव द्रव्य निरन्तर चैतन्यरुप धर्मसे उपयुक्त होनेके कारण उसकी अपेक्षा एक ही हैं । ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकारका हैं । कर्मफलचेतना, कर्मचेतना और इ ानचेतनासे लक्ष्यमाण होनेके कारण तीन भेदरुप हैं । अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यके भेदसे तीन भेदरुप हैं । चार गतियोंमें परिभ्रमण करनेकी अपेक्षा इसके चार भेद हैं । औदयिक आदि पांच प्रधान गुणोंसे युक्त होनेके कारण इसके पांच भेद हैं । भवान्तरमें संक्रमणके समय पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे इसतरह छह संक्रमणलक्षण अपक्रमोंसे युक्त होनेकी अपेक्षा छह प्रकारका हैं । अस्ति, नास्ति इत्यादि सात भंगोंसे युक्त होनेकी अपेक्षा सात प्रकारका हैं । ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंके आश्रवसे युक्त होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका हैं । अथवा ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका तथा आठ गुणोंका आश्रय होनेकी अपेक्षा आठ प्रकारका हैं। जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंको विषय करनेवाला अथवा जीवादि नौ प्रकारके पदार्थोंरुप परिणमन करनेवाला, होनेकी अपेक्षा नौ प्रकारका हैं । पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, साधारणवनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजातिके भेदसे दश स्थानगत होनेकी अपेक्षा दश प्रकारका कहा गया हैं ।। ७२-७३ ।।

समवायो णाम अंगं चउसट्ठि-सहस्सब्भहिय-एग-लक्ख-पदेहि १६४००० सव्वपयत्थाणं समवायं वण्णेदि (१ समवाएणं एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुट्ठीए दुवालसंगस्स य गणिपिडगश्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति । तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरे वि अ बहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुअ-सुरगणाणं आहारुस्सासलेसाआवाससंखआययप्पमाणउववायचवाउग्गहणोवहिवेयणविहाण-
उवओगजोगइंदियकसाय विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेहपरिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थगरगणहराणं सम्मत्तभरहाहिवाण चक्कीणं चेव

चक्कहरहलहराण य वासाण य णिग्गमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति X X । सम. सू. १३९.) । सो वि समवायो चउव्विहो-दव्व-खेत्त-काल-भावसमवायो चेदि । तत्थ दव्वसमवायो धम्मत्थिय-अधम्मत्थिय-लोगागास-एगजीव-पदेसा च समा । खेत्तदो सीमंतणिरय-माणुसखेत्त-उडुविमाण-सिद्धिखेत्तं च समा । कालदो समयो समएण, मुहुत्तो मुहुत्तो मुहुत्तेण समो । भावदो केवलणाणं केवल-दंसणेण समं, णेयप्पमाणणाण (२ मु. णेयप्पमांणं णाण--)- मेत्त-चेयणोवलंभादो । वियाहपण्णती णाम अंगं दोहि लक्खेहि अट्ठावीस-सहस्सेहि पदेहि २२८००० किमत्थि जीवो, किं णत्थि जीवो, इच्चेवमाइयाइं सट्ठि-वायरण (३ क. वाहरण.)-सहस्साणि परुवेदि (४ वियाहेणं नाणाविहसुरनरिंदरायरिसिविविहसंसइअपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेणं भासियाणं दव्वगुणखेत्तकालपज्जयपदेसपरिणामजहच्छिट्ठियभावअणुगमणिक्खेवणयप्पमाणसुनिउणोवक्कमवि विहप्पकार- पगडपयासियाणं X X X छत्तीस सहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ X X X पण्णविज्जंति । सम. सू. १४०.)। णाहाधम्मकहा णाम (५ नाथः त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं,) अंगं पंच-लक्ख-छप्पण्ण-

---

समवाय नामका अंग एक लाख चौसष्ठ हजार पदोंके द्वारा संपूर्ण पदार्थोंके समवायका वर्णन करता हैं, अर्थात् सादृश्यसामान्यसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा जीवादि पदार्थोंका ज्ञान कराता हैं । वह समवाय चार प्रकारका हैं- द्रव्यसमवाय, क्षेत्रसमवाय, कालसमवाय और भावसमवाय । उनमेंसे, द्रव्यसमवायकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, लोककाश और एक जीवके प्रदेश समान हैं । क्षेत्रसमवायकी अपेक्षा प्रथमनरकके प्रथम पटलका सीमन्तक नामका इन्द्रक बिल, ढाई द्वीपप्रमाण मनुष्यक्षेत्र, प्रथमस्वर्गके प्रथम पटलका ऋजु नामका इन्द्रक विमान और सिद्धक्षेत्र समान हैं । कालकी अपेक्षा एक समय एक समयके बराबर हैं और एक मुहूर्त एक मुहुर्तके बराबर हैं । भावकी अपेक्षा केवलज्ञान केवलदर्शनके समान हैं, क्योंकि, ज्ञेयप्रमाण ज्ञान मात्र चेतनाशक्तिकी उपलब्धि होती हैं । व्याख्याप्रज्ञप्ति नामका अंग दो लाख अट्ठाईस हजार पदोंद्वारा क्या जीव हैं ? क्या जीव नहीं हैं ? इत्यादिक रुपसे साठ हजार प्रश्नोंका व्याख्यान करता हैं । नाथधर्मकथा अथवा ज्ञातृधर्मकथा नामका अंग पांच लाख छप्पन्न हजार पदोंद्वारा सूत्र पौरुषी अर्थात् सिद्धान्तोक्त विधिसे स्वाध्यायकी सहस्स-पदेहि ५५६००० सुत्त-

पोरिसीसु (१ सुत्तपोरिसी-सूत्रपौरुषी सिद्धान्तोक्तविधिना स्वाध्यायप्रस्थापनम् । अभि.रा.को.) तित्थयराणं धम्मुवदेसणं (२ मु. धम्मदेसणं ।) गणहरदेवस्स जाद-संसयस्स संदेह-छिंदण-विहाणं, बहुविह-कहाओ उवकहाओ च वण्णेदि । उवासयज्झयणं णाम अंगं एक्कारस-लक्ख-सत्तरि-सहस्स-पदेहि ११७००००-

दंसण-वद-सामाइय-पोसह-सच्चित्त-राइभत्ते य ।

बम्हारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्दिट्ठ-देसविरदी य (३ प्रा.प. १, १३६ । गो.जी. ४७७.) ।। ७४ ।।

इदि एक्कारस-विह-उवासगाणं लक्खणं तेसिं चेव वदारोवण-विहाणं तेसिमाचरणं च वण्णेदि (४ उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा । वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभ-अभिगम-सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण-उत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहण-पालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासा अपच्छिममारणं-तिया य संलेहणाझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता X X कप्पवरविमाणुत्तमेसु अणुभवंति X X अणोवमाइं सोक्खाइं । एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य X X आघविज्जंति । सम.सू. १४२.) । अंतयडदसा णाम अंगं तेवीस-लक्ख-अट्ठावीस-सहस्स-

---

प्रस्थापना हो इसलिये, तीर्थकरोंकी धर्मदेशनाका, सन्देहको प्राप्त गणधरदेवके सन्देहको दूर करनेकी विधिका तथा अनेक प्रकारकी कथा और उपकथाओंका वर्णन करता हैं । उपासकाध्ययन नामका अंग ग्यारह लाख सत्तर हजार पदोंके द्वारा दर्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रम्हचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत इन ग्यारह प्रकारके श्रावकोंके लक्षण, उन्हींके व्रत धारण करनेकी विधि और उनके आचरणका वर्णन करता हैं । अन्तकृद्दशा नामका अंग तेवीस लाख अट्ठाईस हजार पदोंके द्वारा एक एक तीर्थकरके तीर्थमें नानाप्रकारके दारुण उपसर्गोंको सहन कर और

प्रातिहार्य अर्थात् अतिशय विशेषोंको प्राप्त कर निर्वाणको प्राप्त हुये दश दश अन्तकृतकेवलियोंका वर्णन करता हैं, तत्वार्थभाष्यमें भी कहा हैं--

---

घातिकर्मक्षयानन्तरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्न: तीर्थकरस्य पूर्वाह्नमध्याह्ना-पराह्नार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यत द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति अन्यकालेऽपि गणधर-शक्रचक्रधरप्रश्नानन्तरं चोभदवति । एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनि: समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मकं वा धर्म कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरुपा धर्मकथा तत्पृष्ठास्तित्वानास्तित्वादिस्वरुपकथनम् । अथवा ज्ञातृणां तीर्थकरगणधरदशक्रचक्रधरादीनां धर्मानुबंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथा नाम वा षष्ठमंगम् । गो.जी.,जी.प्र.टी. ३५६. णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइअइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जावो सुयपरिग्गहातवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाइं पुणबोहिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति X X । सम.सू. १४१.

पदेहि २३२८००० एक्केक्कम्हि य तित्थे दारुणे बहुविहोवसग्गे सहिऊण पाडिहेरं लद्धण णिव्वाणं गदे दस दस वण्णेदि । उक्तं च तत्वार्थभाष्ये--संसारस्यान्त: कृतो यैस्तेऽन्तकृत: नमि-मतङ्ग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलीक-किष्कंविल (१ मु. किष्किंविल ।)- पालम्बाष्टपुत्रा इति एते दश वर्द्धमानतीर्थकर-तीर्थे (२ "संसारस्यान्त: कृतो यैस्तेऽन्तकृत: नमिमतंगसोमिलरामपुत्रसुदर्शनयमवाल्मीकवलीकनिष्कंबल-पालंबष्टपुत्रा इत्येते दश वर्धमानतीर्थकरतीर्थे " ।। त.रा.वा.पृ. ५१. 'वलीक' स्थाने 'वलिक' पाठ: गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३५७. "अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता । तं जहा, णमि १ मातंगे २ सोमिले ३ रामगुत्ते ४ सुदंसणे ५ चेव । जमाली ६ त भगाली त ७ किंकमे ८ पल्लतेतिय ९ ।। फाले अंबडपुत्ते त १० एमेते दस आहिता ।१ एतानि च नमीत्यादिकान्यन्तकृत्साधुनामानि अन्तकृद्दशाङ्गप्रथमवर्गेऽध्ययनसंग्रहे नोपलभ्यन्ते, यतस्तत्राभिधीयते-- 'गोयम १ समुद्द २ सागर ३ गंभीरे ४ चेव होइ थिमिए ५ य । अयले ६ कपिल्ले ७ खलु अक्खोभ ८ पसेणइ ९ विण्हू १० ।। ततो वाचनान्तरापेक्षाणि इमानीति संभावयाम: । न च जन्मान्तरनामापेक्षया एतानि भविष्यन्तीति वाच्यं, जन्मान्तराणां तत्र

अनभिधीयमानत्वादिति । स्था.सू. ७५४. (टीका).) । एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये, एवं दश दशानगारा: दारुणानुपसर्गान्निजिंत्य कृत्स्नकर्मक्षयादन्तकृतो दशास्यां वर्ण्यन्त इति अन्तकृद्दशा (३ अंतगडदसासु णं अंतगडाणं X X समोसरणा धम्मायरिया, धम्मकहा X X पव्वज्जाओ, X X जियपरीसहाणं चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ, जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुणिवरो X X मोक्खसुखं च पत्ता एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थारेणं परुवेइ । सम.सू. १४३.) । अणुत्तरोववादियदसा णाम अंगं वाणउदि-लक्ख-चोयाल-सहस्स-पदेहि ९२४४००० एक्केक्केम्हि य तित्थे दारुणे बहुविहोवसग्गे सहिऊण पाडिहेरं लद्धूण अणुत्तर-विमाणं गदे दस दस वण्णेदि । उक्तं च तत्वार्थ-

---

जिनहोने संसारका अन्त किया उन्हें अन्तकृतकेवली कहते हैं । वर्द्धमान तीर्थकरके तीर्थमें नमि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्ब, अष्टपुत्र ये दश अन्तकृतकेवली हुए हैं । इसी प्रकार ऋषभदेव आदि तेवीस तीर्थकरोंके तीर्थमें और दूसरे दश दश अनगार दारुण उपसर्गोको जीतकर संपूर्ण कर्मोंके क्षयसे अन्तकृतकेवली हुए । इन सबकी दशाका जिसमें वर्णन किया जाता हैं उसे अन्तकृद्दशा नामका अंग कहते हैं ।

अनुत्तरौपपादिकदशा नामका अंग बानवे लाख चवालीस हजार पदोंद्वारा एक एक तीर्थमें नाना प्रकारके दारुण उपसर्गोंको सहकर और प्रातिहार्य अर्थात् अतिशयविशेषोंको प्राप्त करके पांच अनुत्तर विमानोंमें गये हुए दश दश अनुत्तरौपपादिकोंका वर्णन करता हैं । तत्वार्थ-भाष्यमें भी कहा हैं

.

उपपादजन्म ही जिनका प्रयोजन हैं उन्हें औपपादिक कहते हैं । विजय, वैजयन्त, भाष्ये-- उपपादो जन्म प्रयोजनमेषां त इमे औपपादिका:, विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजित-सर्वार्थसिद्धाख्यानि पंचानुत्तराणि । अनुत्तरेष्वौपपादिका: अनुत्तरौपपादिका:, ऋषिदास-धन्य-सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नन्द (१ 'कार्तिक नंद' इति पाठ: । त.रा.वा.पृ. ५१. 'कार्तिकेय नंद' इति पाठ: गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३५७. मु. कार्तिकेयानन्द ।)-नन्दन-शालिभद्राभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा और इत्येते दश वर्द्धमानतीर्थकरतीर्थे । एवमृषभादीनां त्रयोविंशतेस्तीर्थेष्वन्येऽन्ये एवं दश दशानगारा:

दारुणानुपसर्गान्निर्जित्य विजयाद्यनुत्तरेषूत्पन्नाः इत्येवमनुत्तरौपपादिकाः दशास्यां वर्ण्यन्त इत्यनुत्तरौपपादिकदशा (२ अणुत्तरोववाइयदसासु णं अनुत्तरोववाइयाणं X X X तित्थकरसमोसणाइ पंरमंगल्लजगाहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीण X X अणगारमहरिसीणं वण्णओ X X अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा X X जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अनुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण X X आघविज्जंति सम. सू. १४४. ईसिदासे य १ धण्णे त २ सुणक्खत्ते य ३ कातिते ४ । सट्ठाणे ५ सालिभद्दे त ६, आणंदे ७ तेतली ८ तित । दसन्नभद्दे ९ अत्तिमुत्ते १० एमेते दस आहिया ।१ 'अणुत्तरो' इत्यादि, इह च त्रयो वर्गास्तज्ञ तृतीयवर्गे दृश्यमानाध्ययनैः कैश्चित्सह साम्यमस्ति, न सर्वैः । यतस्तत्र तु दृश्यते 'धन्यश्च सुनक्षत्रः ऋषिदासश्चाख्यातः पेल्लको रामपुत्रश्चन्द्रमाः प्रोष्ठक इति ।। १ ।। पेढालपुत्रोऽनगारः पोट्टिलश्च विहल्लः दशम उक्तः, एवमेते आख्याता दश ।। २ ।। तदेवमिहापि वाचनान्तरापेक्षयाऽययनविभाग उक्तो न पुनरुपलभ्यमानवाचनापेक्षयेति । स्था.सू. ७५५. (टीका)) । पण्हवायरणं णाम अंगं तेणउदिलक्ख-सोलह-सहस्स-पदेहि ९३१६००० अक्खेवणी विक्खेवणी संवेयणी निव्वेयणी चेदि

जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पांच अनुत्तर विमान हैं । जो अनुत्तरोंमें उपपादजन्मसे पैदा होते हैं, उन्हें अनुत्तरौपपादिक कहते हैं । ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, आनन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय वारिषेण और चिलातपुत्र ये दश अनुत्तरौपपादिक वर्धमान तीर्थकरके तीर्थमें हुए हैं । इसी तरह ऋषभनाथ आदि तेवीस तीर्थकरोंके तीर्थमें अन्य दश दश महासाधु दारुण उपसर्गोंका जीतकर विजयादिक पांच अनुत्तरोंमें उत्पन्न हुए । इस तरह अनुत्तरोंमें उत्पन्न होनेवाले दश साधुओंका जिसमें वर्णन किया जावे उसे अनुत्तरौपपादिकदशा नामका अंग कहते हैं ।

प्रश्नव्याकरण नामका अंग तेरानवे लाख सोलह हजार पदोंके द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्देदनी इन चार कथाओंका (तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालसंबन्धी धन,

ध्ान्य, लाभ, अलाभ, जीवित, मरण, जय और पराजय संबन्धी प्रश्नोंके पूंछनेपर उनके उपायका) वर्णन करता हैं ।

चउव्विहाओ कहाओ वण्णेदि (१ प्रश्नस्य दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरुपस्यार्थस्त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदु:खजी-वितमणजयपराजयादिरुपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणम् । अथवा शिष्यप्रश्नानुरुपतया अवक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं नाम । गो.जी.,जी.,प्र.,टी. ३५७.) । तत्थ अक्खेवणी (२ प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यनुयोरुपपरमागमपदार्थानां तीर्थकरादिवृत्तान्तलोक-संस्थानदेशसकलयधिर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३५७.) णाम छद्दव्व-णव-पयत्थाणं सरुवं दिगंतर-समयांतर-णिराकरणं सुद्धिं करेंती परुवेदि । विक्खेवणी (३ प्रमाणनयात्मकयुक्तिहेतुत्वादिबलेन सर्वथैकान्तादिपरसमयार्थनिराकरणरुपा विक्षेपणी कथा । गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३५७.) णाम पर-समएण स-समयं दूसंती पच्छा दिगंतर-सुद्धिं करेंती स-समयं थावंती छद्दव्व-णव-पयत्थे परुवेदि । संवेयणी (४ रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनरुपा संवेजनी कथा । गो.जी.,जी.प्र.,टी. ३५७.) णाम पुष्ण-फल-संकहा । काणि पुण्ण-फलाणि ? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-सुर-विज्जाहरिद्धीओ। णिव्वेयणी (५ संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदु:खदुष्कुलविरुपांगदारिद्रयापमानदु:खादिवर्णना-) णाम पाव-फल-संकहा । काणि पाव-फलाणि ? णिरय-तिरिय-कुमाणुस-जोणीसु जाइ-जरा-मरण-वाहि-वेयणा-दालिद्दादीणि । संसार-सरीर-भोगेसु वेरग्गुप्पाइणी णिव्वेयणी णाम । उक्तं च--

---

जो नाना पकारकी एकान्त दृष्टियोंका और दूसरे समयोंका निराकरणपूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नौ प्रकारके पदार्थोंका प्ररुपण करती हैं उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं । जिसमें पहले परसमयके द्वारा स्वसमयमें दोष बतलाये जाते हैं । अनन्तर परसमयकी आधारभूत अनेक एकान्त दृष्टियोंक्त शोधन करके स्वसमयकी स्थापना की जाती हैं और छह द्रव्य नौ पदार्थोंका प्ररुपण किया जाता हैं उसे विक्षेपणी कथा कहते हैं । पुण्यके फलका वर्णन करनेवाली कथाको संवेदनी कथा कहते हैं ।

शंका-- पुण्यकेफल कौनसे हैं ।

समाधान-- तीर्थंकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरोंकी ऋद्धियां पुण्यके फल हैं ।

पापके फलका वर्णन करनेवाली कथाको निर्वेदनी कथा कहते हैं ।

शंका-- पापके फल कौनसे हैं ?

समाधान-- नरक, तिर्यंच और कुमानुषकी योनियोंमें जन्म, जरा, मरण, व्याधि, वेदना और दारिद्रय आदिकी प्राप्ति पापके फल हैं ।

अथवा, संसार, शरीर और भोगोंमें वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली कथाको निर्वेदनी कथा कहते हैं । कहा भी हैं--